अध्याय-2

आधुनिक संदर्भों में राष्ट्रीय सुरक्षा

सुरक्षा की भावना ही मानव को समूहों में आबद्ध करने के लिए उत्तरदायी है। मानव आदि काल से ही सर्वोच्च सुरक्षा प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहा है। राष्ट्र के रूप में संगठित होने के बाद से सुरक्षा की समस्या ने और भी जटिल स्वरूप प्राप्त कर लिया है। राष्ट्र के पारस्परिक सम्बन्धों के प्रति उसके राष्ट्रीय हितों के कारण प्रतिस्पर्धात्मक सम्बन्धों की प्रकृति में एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से निरन्तर खतरे उत्पन्न होते हैं। अतः इस प्रकृति के अन्तर्गत जहाँ कि राष्ट्रों के मध्य भौतिक स्पर्धा विद्यमान है राष्ट्रीय सुरक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है राष्ट्र अपनी सुरक्षा के माध्यम से एक ऐसा कवच प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, जिनके द्वारा वे अपनी राष्ट्रीय हितों की रक्षा इस स्पर्धात्मक वातावरण में अपने प्रतिस्पर्धियों के प्रति कर सके। राष्ट्रीय सुरक्षा यह बोध उत्पन्न करती है कि अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा ही राष्ट्रीय सुरक्षा है।[1]

सामान्य व्यक्ति यहाँ तक की प्रबुद्ध वर्ग राष्ट्रीय सुरक्षा का अर्थ प्रादेशिक अखण्डता एवं राजनैतिक प्रभुसत्ता की रक्षा से ही लगता है तथा इसके द्वारा सुरक्षा एवं रक्षा को एक ही रूप में लिया जाता है। परन्तु रक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अवयव मात्र ही है। सुरक्षा एक व्यापक शब्द है जिसका सम्बन्ध प्रादेशिक अखण्डता एवं राजनैतिक प्रभुसत्ता की रक्षा के साथ–साथ राष्ट्रीय एवं आन्तरिक मान्यताओं की बाह्य आक्रमणों से रक्षा करने से भी है। आज किसी राष्ट्र की सुरक्षा का अर्थ केवल उसकी सेना तक ही सीमित न होकर, औद्योगिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पहलुओं तक विस्तृत हो गया है, जिस प्रकार आधुनिक युद्ध समग्र युद्ध का सम्पूर्ण युद्ध है, उसी प्रकार सुरक्षा का स्वरूप भी व्यापक हो गया है।[2] इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा के अन्तर्गत राष्ट्र के समस्त हित आते हैं। राष्ट्रहित की कोई सर्वमान्य सूची प्रस्तुत कर पाना असम्भव है, एक राष्ट्र के राष्ट्रीय हित, परिस्थितियों व सार्थकता के अनुरूप प्राथमिकताओं की अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित किए जाते है। सामान्य रूप से राष्ट्रीय हित की परिभाषा राष्ट्र के उन लक्ष्यों के रूप में की जाती है, जिसकी पूर्ति के लिए राष्ट्र

निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। चूंकि राष्ट्रीय हित अनवरत उद्देश्य है, अतः इनके संरक्षण को अवधारण राष्ट्रीय सुरक्षा भी अंतहीन है। किसी राष्ट्र के प्रति ये कोई परम स्थिति नहीं हो सकती जिस पर वह अपनी सुरक्षा का पूर्ण बोध प्राप्त कर सके। राष्ट्रीय सुरक्षा अनवरत हुआ करती है और इसका निर्धारण दूसरे राष्ट्रों के सापेक्ष भी होता है।

आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आश्चर्य जनक परिवर्तन के परिणामस्वरूप विभिन्न देश भौगोलिक दृष्टि से दूर रहते हुए भी अब तक एक–दूसरे के अत्यधिक निकट आ गए हैं। अब एक देश की कार्य पद्धति का प्रभाव दूसरे देश पर पड़े बिना नहीं रह पाता। यदि एक देश अपने पड़ोसी देश या दूरहस्त स्थित देश की इच्छाओं या नीतियों का आदर करता चला जाता है, तो संघर्ष की स्थिति नहीं आ पाती, परन्तु यदि वह इसके विरुद्ध अपनी अनिच्छा या मतभदे प्रदर्शित करता है तो दोनों के बीच संघर्ष की स्थिति अविलम्ब उत्पन्न हो जाती है। इस तरह राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की प्रकृति मूलतः स्पर्धात्मक होने के कारण प्रत्येक राष्ट्र को सुरक्षा के खतरे सदैव अनुमत होते है। अतः वह अनवरत यह प्रसास करता है कि सुरक्षा का कोई स्थायी बोध प्राप्त किया जा सके। "राष्ट्रों में यह प्रवृत्ति होती है कि वे रोज अधिकाधिक सुरक्षा के लिए कार्य करते हैं, जो कभी–कभी शस्त्रास्त्रों की होड़ मैत्री संधियाँ, समयोपयोगी सीमाओं आदि का रूप ले लेते हैं।[3] इन अर्थों में राष्ट्री सुरक्षा अपने आप में राष्ट्र को अनिवार्य हित का स्थान दे देती है। इस तरह राष्ट्रीय सुरक्षा राष्ट्रीय हितों को संरक्षित करती है, एक तरफ तो राष्ट्रीय सुरक्षा राष्ट्रीय हितों को संरक्षित करती है, तो दूसरी तरफ राष्ट्र का अनिवार्य राष्ट्रीय हित हुआ करती है।

सुरक्षा के महत्व को कोई भी नहीं नकार सकता। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि सरुक्षा मध्यवर्ती राष्ट्रीय हित है या अंतिम हित। "मैकिया वैली" के अनुयायी राष्ट्रीय सुरक्षा को

आर्थिक राष्ट्रीय हितों के रूप में ही विश्लेषित करते हैं। पर कुछ ऐसे लोग भी है जो कहते हैं कि राष्ट्रीय सुरक्षा वास्तविक लक्ष्य नहीं है और इनका औचित्य उन उच्चतर मूल्यों की पदावली में ही सिद्ध करना चाहिए जिनकी रक्षा करना राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रयोजन है। इस प्रकार राष्ट्रीय हित राष्ट्रों के बीच स्पर्धा को जन्म देती है। प्रत्येक राष्ट्र को दूसरों के सापेक्ष श्रेष्ठ सुरक्षा प्राप्त करने की आशंका राष्ट्रों की बीच प्रतिस्पर्धा को जन्म देकर असुरक्षा उत्पन्न करती है। राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति राष्ट्रों का यह दृष्टिकोण ही है कि वह राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष असीमित खतरों का सृजन करता है। फ्रेंक टायसन एवं फ्रेंक एल0 सीमोनी के अनुसार "राष्ट्रीय सुरक्षा सरकार के नीति का एक अंग है जिसका लक्ष्य अपने व्यापक राष्ट्रीय मूल्यों की अभिवृद्धि या रक्षा हेतु वर्तमान एवं सम्भावित प्रतिस्पर्धियों के विरुद्ध राष्ट्रीय एवं उक्त राष्ट्रीय परिस्थितियों को पक्ष में करना है।[4]

इन दोनों विचारकों ने व्यापक राष्ट्रीय हितों की व्याख्या उन मौलिक सिद्धान्तों के रूप में की है, जिस पर किसी राष्ट्र का सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं भौतिक स्वरूप आधारित होता है। इस तरह इस परिभाषा के अन्तर्गत राष्ट्रीय मूल्यों की रक्षा व अभिवृद्धि हेतु अंतर्राष्ट्रीय एवं घरेलू परिस्थितियाँ पर नियंत्रण रखना है। परिस्थितियों को अनुकूल करने का अर्थ राष्ट्रीय सुरक्षा में निहित है। महेन्द्र कुमार ने सुरक्षा को पहले से अर्जित किये जाने वाले मूल्यों की रक्षा के रूप में परिभाषित किया है। यह ने केवल वर्तमान समय में मूल्यों की रक्षा की बात करते हैं, वरन राष्ट्रीय सुरक्षा को भविष्य की गारंटी भी मानते हैं। इसी तरह वाल्टर लिपमेन के शब्दों में– "कोई राष्ट्र केवल उसी सीमा तक सुरक्षित है जितनी दूर तक उसे, यदि वह युद्ध से बचना चाहता है तो अपने आधारभूत मूल्यों को कुर्बान के लिए मजबूर होने का खतरा नहीं है, और यदि उसे ललकारा जाय तो जितनी दूर तक वह ऐसे युद्ध में विजय द्वारा उन्हें कायम रखने में समर्थ है।[5] इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुरक्षा राष्ट्र के हमले

के निवारण के सामर्थ्य का और आवश्यक पड़े तो उसे परास्त करने के सामर्थ्य का मामला है। इन अर्थों में सुरक्षा स्वयं एक मूल बन जाती है, जिसे शक्ति या सम्पत्ति का समानार्थ माना जा सकता है। परन्तु यदि सुरक्षा सारतः धमकियों के ध्येय के अभाव का बोध ही है तो यह निश्चित करना कठिन है कि कितनी सुरक्षा व्यवस्था से वह बोध प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। केवल सीमाओं की रक्षा का अर्थ राष्ट्रीय सुरक्षा को संकीर्णता प्रदान करता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के अंतर्गत ऐसी परिस्थितियों को प्रतिस्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं, जिसके आधार पर राष्ट्र दृढ़ता पूर्वक, संभावित खतरों का सामना करने की क्षमता प्राप्त कर सके। क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा की सुव्यवस्था इस बात से अधिक आंकी जाएगी कि वह किस हद तक शत्रु राष्ट्र के सैन्य शक्ति के हास्य, उसकी आर्थिक व राजनैतिक स्थिति को कमजोर करने एवं उसके सैनिकों को मनोबलहीन करने में सफल होती है।[6]

इस तरह राष्ट्रीय सुरक्षा के अंतर्गत राष्ट्र के समस्त न्याय संगत हितों की रक्षा निहित है। राष्ट्रीय सुरक्षा बाह्य व आंतरिक दोनों ही संदर्भों में राष्ट्रीय हितों की रक्षा का भाव उत्पन्न करती है ताकि संविधान में निहित राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था भी सुदृढ़ बनी रह सके तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में स्वयं की सार्वभौमिकता सुरक्षित बनी रहे। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय सुरक्षा का अर्थ बिना राष्ट्रीय हित का त्याग किये, वास्तविक शांति स्थापित करना है और शान्ति एक ऐसी परिस्थिति है जिसके अंतर्गत सामाजिक शान्ति एवं साधन मुख्यतः सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तकनीक और सांस्कृतिक समस्याओं को सुलझाने में प्रयोग कर सकते हैं। जे0 बन्द्योपाध्याय ने राष्ट्रीय सुरक्षा के अन्तर्गत रक्षित किए जाने वाले राष्ट्रीय हितों को सामान्य सूची में मुख्य तीन हितों को सम्मिलित किया है। अ– क्षेत्रीय अखण्डता, ब–सम्प्रभुता,

स–नागरिकों के जीवन व सम्पत्ति की रक्षा। इन हितों में प्राथमिकता एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र व एक परिस्थिति से दूसरे परिस्थिति के बीच भिन्न हुआ करती है। केवल व्यवहारिक धरातल पर निम्नवत हितों की इन सूची के आधार पर राष्ट्रीय हितों को समझा जा सकता है।[1]

राष्ट्रीय सुरक्षा के पहलू के अन्तर्गत मूल रूप से इसके दो पक्ष सम्मिलित है :–

1–बाह्य सुरक्षा 2–आंतरिक सुरक्षा।

बाह्य सुरक्षाओं से तात्पर्य अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा सीमाओं से बाहर की तरफ होता है। अपने प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों के विरुद्ध अपने हितों की रक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का मुख्य तत्व है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अन्तर्गत राष्ट्र अपने हितों के अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का सामंजस्य करते है क्योंकि आज के युग में किसी भी देश को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ पारस्परिक कार्यवाही करनी पड़ती है। के0 सुब्रह्मण्यम के शब्दों में– "सुरक्षा की समस्या विकासशील राष्ट्रीय राज्यों के साथ कठिनाई से जुड़ी हुई है।" वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रतिस्पर्धात्मक प्रकृति में राष्ट्र अपनी बाह्य सुरक्षा द्वारा शत्रु राष्ट्रों के विरुद्ध राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हैं। राष्ट्रीय हितों का संरक्षण एवं अभिवृद्धि राष्ट्र के आंतरिक परिप्रेक्ष्यों में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। राष्ट्रीय सुरक्षा का मूल उद्देश्य है आंतरिक मूल्यों की रक्षा करता। आंतरिक सुरक्षा का तात्पर्य अपने राष्ट्र की गृह परिस्थिति को अनुकूल बनाने से है, जिससे की राष्ट्रीय हितों की रक्षा भली–भांति हो सके।

आन्तरिक सुरक्षा का अर्थ संवैधानिक सुरक्षा से भी लगाया जा सकता है, अर्थात् राष्ट्र अपने संविधान में वर्णित व्यवस्थाओं व प्राविधानों पर चलते हुए अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा कर पा रहा है या नहीं? राष्ट्र के लिए उसके हितों के प्रति आंतरिक खतरे निरन्तर बने रहते है। ऐसे खतरों का मुख्य कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में उथल पुथल ही हो

सकता है। इस तरह के प्रादुर्भाव में बाह्य शक्तियाँ भी अंदरूनी रूप से हाथ बटाने लगती है। न केवल प्रतिस्पर्धी राष्ट्र वरन राष्ट्रीय नागरिकों का कोई समूह भी राष्ट्रीय हितों के लिए व्यवधान उपस्थित कर सकता है। अतः आंतरिक सुरक्षा का क्षेत्र इसी आंतरिक परिस्थितियों की अनुकूलता से होती है, जिससे कि अपने राष्ट्रीय हितों के लिए होने वाले इन आतंरिक व्यवधानों का निराकरण किया जा सके। आंतरिक सुरक्षा के अन्तर्गत राष्ट्र सुगठित एवं सुदृढ़ राजनैतिक इकाई के रूप में उभर कर ही अपनी बाह्य सुरक्षा का रूप निर्धारित करता है।[10] पारस्परिक अंतरविधियों व गृह कलह से युक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय समुदायों में अपने हितों की रक्षा करने में सक्षम नहीं हो सकता, उसके सामने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रकार की समस्याएं उपस्थित हो सकती है। अतः अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रथम क्षेत्र राष्ट्र की आंतरिक परिस्थितियों के संदर्भ में ही है।

सुरक्षा राष्ट्र का प्रथम एवं अनिवार्य दायित्व होता है।[11] मौलिक रूप से स्पर्धामय इस विश्व व्यवस्था में प्रत्येक राष्ट्र को अनेक राष्ट्रीय हितों के सम्बर्धन व संरक्षणं के निमित्त सतत तत्पर रहना होता है। सुरक्षा का प्रश्न राष्ट्र के अस्तित्व के साथ जुड़ा होने के कारण उसे अपनी सुरक्षा के लिए अंतिम रूप से स्व निर्भर रहना पड़ता है। सुरक्षा करने की क्षमता राज्य के अस्तित्व से सम्बन्धित है। अतः उसकी स्वतंत्रता के लिए अनिवार्य शर्त है। राष्ट्र की स्वयं की शक्ति ही उसकी सुरक्षा की अंतिम गारन्टी होती है। कोई भी राष्ट्र अपनी शक्ति के अतिरिक्त सुरक्षा के किसी दूसरे विकल्प पर नहीं रह सकता।

यदि वह इस तथ्य की उपेक्षा करता है तो वह अपने लिए स्वयं आत्मघाती दृष्टिकोण अपना रहा है। सन् 1962 के पूर्व भारतीय राष्ट्र नेताओं ने इसी तरह की भूल की थी लेकिन 1962 ई0 के पश्चात् आज तक हम अपनी सुरक्षा को बनाये रखने में पूर्ण समक्ष रहे है।

राष्ट्र को अपनी सुरक्षा का निर्माण आस–पास के परिवेश के अन्तर्गत करना होता है। आज विश्व राजनीति जिस आणविक महाविनाश अंतहीन सैनिक स्पर्धा साम्यवादी व पूँजी वादी गुटों में उत्पन्न गतिरोध, अन्तरशीत युद्ध के विस्तृत हथकन्डे, विकसित औद्योगिक विश्व में व्याप्त आर्थिक संकट, विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य नहीं विश्व अर्थव्यवस्था के निर्माण को लेकर हो रहा विरोध एवं विकासशील राष्ट्रों का पारस्परिक उलझाव की जिस प्रवृत्तियों से गुजर रही है उसमें यह स्वाभाविक है कि राष्ट्रों में एक दूसरे के प्रति भय, संवेग, घृणा व वैमनस्यता को बढ़ावा मिलेगा और राष्ट्रों की सुरक्षा समस्यायें क्रमशः जटिल स्वरूप धारण करेगी।[12] विकसित राष्ट्र अपनी नीति के सम्बर्धन के निमित्त युद्ध के प्रयोग की अवधारणा पर आचरण करते हुए, विकासशील राष्ट्रों के मध्य 120 युद्ध लड़े गए जबकि विकसित राष्ट्रों के मध्य लड़े गए युद्धों की संख्या मात्र 6 रही।

विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों की सुरक्षा समस्याओं में काफी अंतर होता है। औद्योगिक राष्ट्रों के मध्य चलने वाली शस्त्र स्पर्धा का तात्पर्य एकमात्र युद्ध नहीं होता बल्कि ये होड़ उनके मध्य वाक–युद्ध और विकासशील राष्ट्रों में हस्तक्षेप के युद्ध को बढ़ावा देती है। विकसित विश्व में शस्त्र स्पर्धा दो शक्तिशाली गुटों के स्पर्धात्मक सम्बन्ध कीं अभिव्यक्ति होती है। जबकि विकासशील राष्ट्रों के मध्य यह उनकी विशिष्ट सुरक्षा समस्या का रूप ले लेती है। स्पर्धात्मक सम्बन्धों के अन्तरगत विकसित परस्पर असैनिक उपायों जैसे– खाद्यान्नों पर रोक, व्यापार पर प्रतिबंध व प्रौद्योगिकी के स्थानान्तरण पर प्रतिबंध, वित्तीय अड़चनों आदि को जन्म देती है। लेकिन विकासशील राष्ट्रों के लिए एकमात्र सीमित तथा व्यापक सैनिक संघर्ष ही विकल्प होता है। विकासशील राष्ट्रों के रूप में भारत को भी इन खतरों से गुजरना पड़ रहा है।

भारतीय उपमहाद्वीप में महाशक्तियों के रूचि का आयाम निःसंदेह विस्तृत रूप ले रहा है। दिसम्बर 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप, इरान की क्रान्ति, पश्चिम एशिया की

होने वाली उथल–पुथल, हिन्द महासागर में बढ़ती नौसैनिक हलचलें एवं महाशक्तियों के मध्य प्रारम्भ हुए नव–शीत युद्ध की सैनिक प्रवृत्ति में अमेरिका व सोवियर संघ द्वारा उपमहाद्वीप में गहराई के साथ उलझ गया। महाशक्तियों के केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप में संघातक शस्त्रों के प्रवाह का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ है। उससे भारतीय सुरक्षा के समक्ष निश्चित रूप से गम्भीर स्थिति उत्पन्न हुई है। अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों में होने वाले घटनाक्रमों से भारत गम्भीरता के साथ जुड़ा हुआ है। जिसका स्पष्ट प्रभाव हिन्द महासागर क्षेत्र में परिलक्षित हो रहा है।[13] तनाव शैथिल्य के स्वरूप में तीव्रता के साथ कभी होती जा रही है एवं औद्योगिक विश्व में नई शस्त्र स्पर्धा निरन्तर प्रगति पर है। दोनों महाशक्तियों के बीच शीत युद्ध है काल में और इस उत्तर शीत युद्ध के काल में तनाव के केन्द्र फिलीस्तीन व इसके चारों ओर के क्षेत्र सहित पश्चिम एशिया, फारस की खाड़ी, सहित दक्षिण पश्चिम एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया, हिन्द महासागर एवं हार्न आफ अफ्रीका है।

उत्तर शीत युद्ध में भी ज्वलन्त क्षेत्र के अन्दर पश्चिम व दक्षिण पश्चिम एशिया है। पश्चिम व दक्षिण पश्चिम एशिया को महाशक्तियां यूरोप के पश्चात् अपने शीत युद्ध के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्व देती रही है। पश्चिमी व दक्षिण पश्चिम एशिया विश्व का सर्वाधिक तेल समृद्ध क्षेत्र है और इस तेल पर, पश्चिमी राष्ट्रों का औद्योगिक ढांचा निर्भर करता है। यह क्षेत्र तीन महाशक्तियों के संगम पर अवस्थित है। यूरोप में महाशक्तियों के अपने शीतयुद्ध के प्रथम चरण के अन्तर्गत स्थायित्व प्राप्त करने के बाद शीतयुद्ध के अन्तर्गत निश्चित सिद्धान्तों का पालन करते हुए यूरोप में अस्थायित्व नहीं उत्पन्न करना चाहती थी। पोलैन्ड की समस्या के संदर्भ में महाशक्तियों का यह दृष्टिकोण उजागर होता है। लेकिन पश्चिम व दक्षिण पश्चिम एशिया में चलने वाले नवशीत युद्ध के अन्तर्गत मुक्त आचरण करती रही है जो संघर्ष की नई सम्भावनाओं को जन्म दे रहा है।

शीत युद्ध का दूसरा ज्वलन्त केन्द्र दक्षिण पूर्व एशिया रहा है। कम्पोचिया की समस्या रूस, चीन विरोध के दक्षिण पूर्वी एशिया में बढ़ रहे आयाम की पृष्ठभूमि में यह क्षेत्र शीत युद्ध की उग्रता में दूसरे स्थान पर आता है। एक तरफ पश्चिम व दक्षिण पश्चिम एशिया व इसके दूसरी तरफ दक्षिण पूर्वी एशिया के मध्यवर्ती के रूप में भारत अपनी सुरक्षा की खोज में लगा हुआ है। भारत की भौगोलिक अवस्थिति पश्चिम व दक्षिण पश्चिम एशिया में दक्षिण एशिया व हिन्द महासागर को भारतीय सुरक्षा में विशिष्टता प्रदान करती है।

आज का भारत न तो पाकिस्तान या इन्डोनेशिया के समकक्ष का राष्ट्र है। और न ही विश्व के कमजोर राष्ट्रों में है। यह सच है कि 1950 व 1960 के दशक में चीनी एवं पाकिस्तानी अपने एक को दस भारतीयों के बराबर स्वीकृत कर रहे थे लेकिन आज इन राष्ट्रों के दृष्टिकोण में व्यापक अंतर हो चुका हैं आज भारत की बाह्य छवि भिन्न है, यह विकासशील राष्ट्रों में सर्वाधिक विकसित राष्ट्र है। "मध्य शक्ति" की भारत की स्थिति वर्षों पूर्व परिवर्तित हो चुकी है। आर्थिक क्षेत्र में उसकी स्थिति विकसित एवं विकासशील के मध्य है। आणविक परिधि में उसके अणु परीक्षण के पश्चात् इसे अणुशस्त्र का राष्ट्र कहा जा सकता है और न ही अणु विहीन राष्ट्र। विकासशील राष्ट्रों में भारत का एकमात्र राष्ट्र है जिसने शस्त्रों की शक्ति विश्व समुदाय में बंगलादेश को अमेरिका, चीन व संयुक्त राष्ट्र संघ के बहुमत सदस्यों के विरोध के बाद भी स्वतंत्र कराने में सफलता प्राप्त की। भारत दक्षिण एशिया में एक प्रभावशाली राष्ट्र के रूप में उद्रित हो चुका है। सन् 1971 ई0 में पाकिस्तान के साथ युद्ध में सफलतापूर्वक उभरा है। इसने निश्चित सैनिक प्रयासों के साथ सम्बद्ध व्यापक राजनैतिक लक्षणों को प्राप्त किया है।[2]

खाद्यान्नों के मामले में हमने व्यापक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। इस राष्ट्र ने आणविक परीक्षण सम्पन्न कर लिया है। अन्तरिक्ष में कृत्रिम उपग्रहों की स्थापना कर ली है।

ठोस इंधन वाले वाहकों के साथ जटिल अंतरिक्ष कार्यक्रमों को क्रियान्वित कर रहा है। विकासशील राष्ट्रों के रूप में भारत खुले समुद्र के गर्भ में छिपे खनिज सम्प्रदाओं के दोहन व अंटार्कटिका के सफल अभियानों की योजनाओं पर व्यवहार कर रहा है। आर्थिक क्षेत्रों में प्राप्त उपलब्धियाँ, इन सबके साथ मिलकर भारत की उज्जवल व प्रभावशाली छवि निर्मित कर रही है। इन वाद्य छवि के साथ भारत को पश्चिम द्वारा पाकिस्तान में किए जा रहे शस्त्र संग्रह, चीन का आधुनिकी करण व हिन्द महासागर में महाशक्तियों के जमाव के खतरों को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए स्वीकृत करना है। पाकिस्तान के आणविक कार्यक्रमों के संदर्भ में भारत के समक्ष चीन के साथ–साथ दूसरा आणविक खतरा निर्मित हो रहा है। अपनी सुरक्षा के इन तात्कालिक खतरों के साथ–साथ भारत आन्तरिक सुरक्षा समस्याओं के गम्भीर चरण से गुजर रहा है। पंजाब में अकालियों द्वारा चलाया जा रहा हिंसा आंदोलन, कश्मीर में हो रही राष्ट्र विरोधी गतिविधियाँ एवं असम आंदोलन भारत के आंतरिक व्यक्तित्व को खण्डित कर रहे हैं। आंतरिक सुगठता के आधार पर ही हम अनेक राष्ट्र को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में प्रभावशाली रूपों में प्रस्तुत कर सकते हैं। और राष्ट्रीय हितों का सम्यक निर्वाह कर सकते हैं।

भारत को स्वतंत्रता द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर विभाजन की शर्त के साथ दी गयी। हिन्दू और मुस्लिम को अलग–अलग राष्ट्र के रूप में अलग–अलग अस्तित्व प्रदान किया गया। यद्यपि जनवरी 1940 तक जिन्ना ने पाकिस्तान के विचार को नहीं अपनाया था। 19 जनवरी 1940 को जिन्ना ने लिखा था कि "भारत में दो राष्ट्र हैं और दोनों अपनी मातृभूमि के शासन में सामान्य भाग मिलना चाहिए।" लेकिन आश्चर्य की बात थी कि तीन महीने बाद ही मि0 जिन्ना ने पाकिस्तान का राग अलापना प्रारम्भ कर दिया।

द्विराष्ट्र सिद्धान्त का आधार जॉन स्टुअर्ट मिल का यह विचार था कि राज्य का क्षेत्र

V.B.S. Purvanchal University
Vivekanand
Central Library
Estd. 1999
Jaunpur U.P.

साधारणतया राष्ट्रीयता के क्षेत्र के अनुरूप होना चाहिए। इसी विचार के आधार पर मार्च 1940 के मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में जिना ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा– "हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म शाब्दिक अर्थ में धर्म नहीं है, वरन् ये दो पृथक् और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थाएँ है। हिन्दू और मुस्लिम कभी एक संयुक्त राष्ट्र के रूप में रह सकते हैं यह कोरा एक स्वप्न है। राष्ट्र की किसी भी परिभाषा के अनुसार मुसलमान एक राष्ट्र है, अतः उनका अपना प्रदेश तथा राज्य होना चाहिए।" मि0 जिन्ना द्वारा प्रतिपादित इसी सिद्धान्त के आधार पर लीग के लाहौर अधिवेशन में ही पाकिस्तान की स्थापना सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसमें कहा था कि "भारत के पश्चिमोत्तर तथा पूर्वी क्षेत्र जैसे मुस्लिम बहुल प्रान्तों को मिलाकर एक संयुक्त राज्य के रूप में संगठित किया जाना चाहिए।" इसके कुछ ही "इसके कुछ ही दिनों बाद "एसोसियेटेड प्रेस आफ अमरीका" को एक भेंट में मि0 जिन्ना ने बताया कि "पाकिस्तान एक जनतंत्रात्मक संघीय राज्य होगा जिसमें पश्चिम में पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, बिलोचिस्तान, सिन्ध, पंजाब तथा पूर्व में बंगाल व आसाम सम्मिलित होंगे।"

मि0 जिन्ना के द्विराष्ट्र सिद्धान्त लीग के पाकिस्तान प्रस्ताव से विभाजन की दिशा में सोचने वाली सभी शक्तियों को नया आधार मिला।

अलीगढ़ के मुहम्मद हुसैन कादरी और प्रो0 जफरूल हुसैन ने दावा किया कि भारत के मुसलमान स्वतः एक राष्ट्र हैं। हिन्दुओं तथा अन्य गैर–मुसलमान दलों से उनका राष्ट्रीय अस्तित्व सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः सूडेटान जर्मन और चेकों में जितना पार्थक्य था, उससे कहीं अधिक पार्थक्य हिन्दुओं तथा मुसलमानों में है।"[15] अलहमजा ने कहा कि "भारत एक देश नहीं है वरन् उसमें कई देश हैं और इसलिए उसे कई राष्ट्रों में विभक्त समझा चाहिए।"[16]

जिन्ना का द्विराष्ट्र सिद्धान्त सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से नितान्त

त्रुटिपूर्ण था सर्वप्रथम तो जैसा कि फ्रेडमान कहते हैं, 'राष्ट्रीयता अब राज्य के लिए आधार प्रदान नहीं कर सकती।' वस्तुतः सोवियत रूस और स्विट्ज़रलैण्ड जैसे बहुराष्ट्रीय राज्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि एक संघीय राज्य के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रीयताएँ शान्तिपूर्वक और अपने सांस्कृतिक जीवन को सुरक्षित रखते हुए निवास कर सकती हैं। मुस्लिम लीग समझती थी कि पाकिस्तान का निर्माण अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा का श्रेष्ठ उपाय होगा परन्तु यह धारणा दूरदर्शिता पूर्ण नहीं थी। लीग ने कभी भी यह विचार नहीं किया कि पाकिस्तान की स्थाना के बाद भी भारत में कुछ मुसलमान और पाकिस्तान में कुछ गैर मुस्लिम अल्पसंख्यक रह जायेगें और अल्पसंख्यकों की समस्या पहले से भीषण रूप धारण कर लेगी। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार मुस्लिम लीग यह भूल गयी थी कि 'राष्ट्रीय राज्य तथा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक वर्ग दोनों में परस्पर विरोध होता है।' लीग की इस पाकिस्तान योजना के सम्बन्ध में 15 अप्रैल 1946 को मौलाना आजाद ने अपने एक वक्तव्य में ठीक ही कहा था कि – "इस योजना पर सभी दृष्टिकोणों से विचार करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह केवल सम्पूर्ण भारत के लिए नहीं वरन् मुसलमानों के लिए एक विशेष रूप से घातक है और यथार्थ में यह जितनी समस्याएँ सुलझाती है, उससे अधिक को जन्म देती है।"[17]

पाकिस्तान योजना के इन घातक प्रभावों के कारण ही न केवल कांग्रेस वरन मुसलमानों के ही एक वर्ग द्वारा इसका पर्याप्त विरोध किया गया। अखिल भारतीय स्वतंत्र मुस्लिम सम्मेलन ने जिसका अधिवेश खान बहादुर अल्लाहबख्श की अध्यक्षता में अप्रैल 1940 में दिल्ली में हुआ, पाकिस्तान योजना को तीव्र आलोचना की और कहा कि यह योजना मुसलमानों को एक पृथकत्व निरोधामान में पटक देगा।[18] जमीयत उल उलेमा ए हिन्द भी पाकिस्तान की माँग की विरोधी थी और उसका कहना था कि "राष्ट्रीय दृष्टि से प्रत्येक मुसलमान भारतीय है।" मजलिस ए बहरार ए हिन्द, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के खुदाई खिदमतगार, बलूचिस्तान के

राष्ट्रवादी मुसलमान, अखिल भारतीय मोमिन सम्मेलन और अखिल भारतीय शिया राजनैतिक सम्मेलन आदि कई मुस्लिम संस्थाएं पाकिस्तान के विरुद्ध थीं। जहाँ तक अमुस्लिमों का सम्बन्ध है, उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि वे अपनी मातृभूमि की एकता को खण्डित करने वाले प्रत्येक प्रयास का प्राण–पण से विरोध करेगें।

इसमें कोई संदेह नहीं कि द्विराष्ट्र सिद्धान्त एक राजनीतिक मूर्खता थी, लेकिन दुर्भाग्यवश राजनीति के क्षेत्र में स्वार्थी राजनीतिज्ञ मूर्खताओं का अत्यन्त बुद्धिमत्ता से उपयोग करते हैं। भारतवर्ष में मि0 जिन्ना और मुस्लिम लीग ने भी यही किया। मुस्लिम लीग अलग राष्ट्र के लिए अपनी माँग को दृढ़तापूर्वक अपनाये रही तथा जब कभी भी संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए कोई प्रयत्न किये गये, पाकिस्तान की माँग ने उन्हें हमेशा ही असफल कर दिया। इन असफल प्रयत्नों में क्रिप्स प्रस्ताव, राजगोपालाचारी योजना और केबिनेट योजना प्रमुख है।

मार्च 1942 में क्रिप्स प्रस्तावों में मुस्लिम लीग के पाकिस्तान सम्बन्धी दावे को स्वीकार कर लिया गया था। उक्त प्रस्तावों के अनुसार, "यदि ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त नवीन संविधान को स्वीकार न करे तो वह अपना एक पृथक अस्तित्व बनाये रख सकता था। नये विधान में सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों को यदि वह चाहेंगे तो सम्राट की सरकार पृथक विधान देना स्वीकार कर लेगी तथा उनका पद भी पूर्ण रूप से संघ के समान होगा।" लेकिन श्री जिन्ना के अनुसार, क्रिप्स प्रस्तावों में पाकिस्तान की कल्पना नितान्त अस्पष्ट थी और उसके पूरे होनें में भी बाधाएं थीं। लीग के इलाहाबाद अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए 4 अप्रैल 1942 को जिन्ना ने कहा था– "क्रिप्स प्रस्तावों में अल्पसंख्यकों को देश से अलग होने का जो अधिकार बताया जाता है, वह भ्रममात्र है क्योंकि सब प्रान्तों में हिन्दू बहुमत के कारण अखिल भारतीय संघ के पक्ष में फैसला हो जायेगा और बंगाल तथा पंजाब में मुसलमान हिन्दू

अल्पसंख्यकों की दया पर निर्भर होगें क्योंकि वहाँ के हिन्दू न्दिूस्तान के साथ रहने की पूरी कोशिश करेगें।"

क्रिप्स प्रस्तावों की विफलता के बाद अप्रैल 1942 में कांग्रेस कार्य समिति की जो बैठक हुई, उसमें श्री राजगोपालाचारी ने खुले तौर पर मुस्लिम लीग के साथ पाकिस्तान के आधार पर समझौते का प्रस्ताव रखा। लेकिन कांग्रेस कार्य समिति ने राजाजी का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। अतः राजाजी कांग्रेस से अलग हो गये। राजाजी का विचार था कि क्योंकि लीग पाकिस्तान के लिए हठ करती है तथा उसे अंग्रेजों की सहानुभूति प्राप्त है। अतः भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए लीग की माँग को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य काई विकल्प नहीं है। सन् 1944 में गाँधी जी की रिहाई के बाद उन्होंने कांग्रेस लीग समझौते के आधार रूप में एक योजना बनायी, जो 'राजगोपालाचारी योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के अनुसार –

(1) मुस्लिम लीग के लिए आवश्यक था कि वह भारत की स्वतंत्रता की माँग से सहमति प्रकट करे तथा अन्तरिम सरकार की स्थापना में कांग्रेस के साथ सहयोग करे।

(2) युद्धोपरान्त एक कमीशन की नियुक्ति हो जो उत्तर–पश्चिमी तथा पूर्वी भारत में उन जिलों निर्दिष्ट करेगा, जहाँ मुसलमान बहुमत है। इन निर्दिष्ट क्षेत्रों के भारत का निर्णय जनमत संग्रह के आधार पर होगा। सीमान्त राज्यों को किसी भी राज्य में सम्मिलित होने की स्वाधीनता होगी।

(3) जनमत संग्रह के पूर्व प्रत्येक दल को अपने पक्ष में प्रचार करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

(4) विभाजन होने पर सुरक्षा, व्यापार तथा संचार साधनों के लिए परस्पर समझौता किया जायेगा।

(5) जनसंख्या का आदान–प्रदान स्वैच्छिक आधार पर ही होगा।

(6) उपर्युक्त शर्तें ब्रिटेन द्वारा भारत को पूर्ण सत्ता तथा उत्तरदायित्व प्रदान करने पर ही लागू होगी।

गाँधी जी ने इस योजना के आधार पर मि0 जिन्ना से बातचीत करने का प्रयत्न किया लेकिन मि0 जिन्ना ने इसे अंगहीन कीड़े लगे हुए तथा दीमक खाये हुए पाकिस्तान तथा "पाकिस्तान का उपहास" कहकर इसे अस्वीकार कर दिया। वस्तुतः गाँधी जी द्वारा मि0 जिन्ना के सम्मुख इस प्रकार की योजना प्रस्तुत किये जाने से जिन्ना की हठधर्मी में वृद्धि ही हुई।[19]

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर प्रान्तों में चुनाव हुए, जिसमें लीग 495 मुस्लिम स्थानों में से 446 मुस्लिम स्थान प्राप्त करने में सफल रही। चुनाव परिणामों से मुसलमानों पर लीग का प्रभाव नष्ट हो गया था। ब्रिटेन के नये प्रधानमंत्री एटली ने भारतीय समस्या के हल के लिए मार्च 1946 में केबिनेट मिशन भारत भेजा, जिसने 16 मार्च 1946 को अपने प्रस्ताव प्रकाशित किये। मिशन ने लीग की पाकिस्तान सम्बन्धी माँग के विषय में कहा कि साम्प्रदायिक समस्या के लिए पाकिस्तान का एक स्वीकार्य हल नहीं है। लेकिन इनके साथ ही लीग को संतुष्ट करना भी जरूरी था और इस हेतु प्रान्तों के समूहीकरण की व्यवस्था की गयी। प्रान्तों के समूहीकरण की यह व्यवस्था केबिनेट योजना को अनिवार्य अंग थी और लीग ने इस बात के आधार पर ही केबिनेट योजना को स्वीकार किया था। लेकिन कांग्रेस के कुछ नेता प्रान्तों के समूहीकरण को एक ऐच्छिक बात मानते थे। इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाते हुए कांग्रेस के एक प्रमुख नेता पं0 जवाहर लाल नेहरू ने 10 जुलाई 1946 को बम्बई में एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि – "संविधान सभा में जाकर हम जो कुछ करेगें, उसके लिए पूर्ण स्वतंत्र होगें। बड़ी संभावना यह है कि प्रान्तों के इस प्रकार के कोई वर्ग नहीं बनेगें।" पं0 नेहरू का यह वक्तव्य "अबुद्धिमतापूर्ण, अराजनीतिक और असामंयिक" था और पं0 नेहरू की आत्मकथा के लेखक माइकेल ब्रेचर ने भी इसे एक गम्भीर त्रुटि माना है।"[20]

जिन्ना ने इस वक्तव्य पर शीघ्र ही अपनी प्रतिक्रिया दिखायी। उसने कहा कि लीग ने पाकिस्तान की माँग को छोड़कर भारी त्याग किया था, किन्तु कांग्रेस नें प्रान्तों के अनिवार्य समूहीकरण को नहीं माना है। कांग्रेस संविधान सभा में अपने बहुमत के बल पर मनमानी करना चाहती है, इसलिए मुस्लिम लीग इस योजना को अस्वीकार करती है। लीग के द्वारा संविधान सभा की बैठकों में भी भाग लिया गया और लीग के इस बहिष्कार के साथ ही कैबिनेट योजना का यह अन्त दुर्भाग्यपूर्ण था, क्योंकि यदि इस योजना के आधार पर कार्य किया जाता तो भारत की एकता की रक्षा सम्भव थी।

लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाही तथा साम्प्रदायिक उपद्रव – 1945 तक जब संवैधानिक उपायों से लीग को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता नहीं मिली, तो लीग ने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए उत्तेजित करना प्रारम्भ कर दिया। कलकत्ता के समाचार पत्र "दि स्टेट्समैन" के 5 अगस्त 1946 के अंक में मुस्लिम लीग के एक प्रमुख नेता शाहिद सुहरावर्दी ने लिखा– "रक्तपात और अव्यवस्था अनिवार्य रूप से अपने आप में बुराई नहीं है, यदि इनका प्रयोग श्रेष्ठ लक्ष्य के लिए किया जाय। मुसलमानों के सम्मुख इस समय कोई भी लक्ष्य पाकिस्तान से श्रेष्ठतर नहीं हो सकता।"[21] यह और इस प्रकार के अन्य अनेक वक्तव्य मुसलमानों का साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए आह्वान थे और साधारण मुसलमान गली–कूँचों में नारे लगाने लगे– लड़कर लेगें पाकिस्तान, बंट के रहेगा हिन्दुस्तान।'

मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त 1946 को "प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस" निश्चित किया। बंगाल की लीगी सरकार ने इस दिन सार्वजनिक छुट्टी कर दी। "इस दिन कलकत्ता और सिलहट में गम्भीर उपद्रव हुए और अकेले कलकत्ते के नरमेघ में लगभग 7000 व्यक्ति मारे गये। हिंसा की आग पूर्वी बंगाल आ पहुँची। नोआखली और त्रिपुरा में जो अत्याचार और रक्तपात हुआ,

उसने चारों ओर आतंक पैदा कर दिया।" बिहार, गढ़मुक्तेश्वर, लाहौर तथा रावलपिण्डी में भी भीषण दंगे हुए। मुसलमानों ने हलाकू तथा चंगेज खाँ के दिन फिर से लाने की धमकी दी। बंगाल और पंजाब की सरकारों ने उपद्रवों को दबाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इस प्रकार के कानून भंग के वातारण में 20 फरवरी, 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने घोषणा की "ब्रिटिश सरकार जून 1948 के पूर्व ही भारतीयों के हाथों में शक्ति का हस्तान्तरण कर देगी।

स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भारत के विभाजन का एकमात्र विकल्प गृह–युद्ध ही है। इस पृष्ठभूमि में 3 जून, 1947 को लार्ड माउण्टबेटन ने अपनी योजना पेश की जिसमें भारत तथा पाकिस्तान इन दो पृथक उपनिवेशों की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी। कांग्रेस सहित भारत के सभी वर्गों ने इस योजना को स्वीकार कर लेना ही बुद्धिमतापूर्ण समझा। इस योजना के आधार पर ब्रिटिश संसद ने जुलाई 1947 में भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम स्वीकार किया। 14 अगस्त 1947 को जिन्ना को पाकिस्तान का गवर्नर जनरल घोषित कर दिया गया और इसी दिन पाकिस्तान ने एक वास्तविकता का रूप धारण कर लिया।

संदर्भ–सूची

1. एन0डी0 पामर एवं एच0सी0 परकिन्स, इण्टर नेशनल रिलेसन्स, पृ0 242
2. मार्गन थाऊ, राष्ट्रों के भव्य राजनीति, पृ0 32
3. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष, पृ0–280
4. फ्रैन्क एल0 ट्रैगन एवं फ्रैस एल0 सिमोनी, नेशनल सिक्योरिटी एण्ड अमेरिकन सोसाइटी, पृ0 31
5. वाटर लिप मैन यू0एस0 फारेन पालिसी, सुरक्षा जुलाई 1981
6. जे0 बन्दोपाध्याय द मेकिंग आफ इन्डियाज फारेन पालिसी पृ0 14
7. वही, पृष्ठ 14 – 15
8. के0 सुब्रह्मण्यम, अवर नेशनल सिक्योरिटी पृ0 5
9. जे0 बन्दोपाध्याय द मेकिंग आफ इन्डियाज फारेन पालिसी, पृ0 15
10. डॉ0 नगेन्द्र सिंह, आधुनिक राज्य का रक्षा तन्त्र, पृ0 9
11. के0 सुब्रह्मण्यम, इन्डियन सिक्योरिटी परसपेक्टिव, पृ0 164
12. माइकल ब्रचर : जवाहर लाल नेहरू, पृ0 – 145
13. अजीत सिंह साहनी, इण्डियन सिक्योरिटीज पृ0 272
14. मि0 जिन्ना : टाइम्स एण्ड टाइम, 19 जनवरी, 1940
15. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद : खण्डिता भारत, पृ0 2
16. अलतमजा : पाकिस्तान, ए नेशन पृ0 7
17. मौलाना आजाद : इण्डिया विन्स फ्रिडम, पृ0 42
18. राजपूत : मुस्लिम लीग, पृ0 95
19. मौलाना आजाद : इण्डिया विन्स फ्रिडम, पृ0 93
20. लियोनार्ड मोस्ली : लास्ट डेज आफ दि ब्रिटिश राज, पृ0 27
21. शाहिद सुहरावर्दा द्वारा मोस्ली : लास्ट डेज आफ दि ब्रिटिश राज, पृ0 32 से उद्धत